डॉ० अम्बेदकर का सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलन

डॉ0 मलय कुमार सिंह

भारत के इतिहास में बुद्ध और महावीर के काल में उनके द्वारा चलाए गए वर्ण भेद, जाति भेद, ब्राह्मण वर्ग-पुरोहित वर्ग श्रेष्ठत्व और मनुष्य की प्रकृति, असमानता के विरूद्ध सशक्त आन्दोलन ने विषमता की मानसिकता को, उसके स्वरूप को कमजोर, दुर्बल, अर्थहीन साबित कर दिया था। सन् 1920 में महात्मा गाँधी और डा. अम्बेदकर दोनों भारत के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में अलग-अलग विचारधारा और आन्दोलनों का नेतृत्व कर रहे थे। गोलमेज परिषद तक तो वे उनको ढंग से जानते भी नहीं थे और इसीलिए उस समय तक गाँधीवादी दलितों का अस्तित्व भी नहीं के बराबर था। दूसरी गोलमेज परिषद में कॉंग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में महात्मा गाँधी एकदम प्रारंभ से ही अछूत वर्ग के संविधानात्मक संरक्षक अधिकारों के माँग के विरोध में भी थे। उन्होंने यंग इण्डिया में 1920-21 ई. में कहा था कि ''स्वराज्य मिलने से पहले ही अछूतपन नष्ट होना चाहिए'' किन्तु द्वितीय गोलमेज परिषद में उनका व्यवहार पूरी तरह से दलितों के विरूद्ध था।

डॉ० अम्बेदकर ने गोलमेज परिषद में यह माँग की थी कि अछूतों के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार सिर्फ अछूतों को ही होना चाहिए और अछूतपन मानना गुनाह, समझा जाना चाहिए। इस तरह का कानून इंडियन पैनल कोड में सम्मलित करना चाहिए। किन्तु, महात्मा गाँधी इसके विरोध में थे। जब कम्युनल अवार्ड घोषित हुआ तो महात्मा गाँधी की जान और अछूतों के राजनीतिक अधिकारों के संबंध में समझौता हुआ। इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि दलित समाज में गाँधीवादी दलितों का एक नया वर्ग पैदा हो गया। कॉंग्रेस ने हमेशा ही अछूत समाज की शक्ति को विभाजित करने का प्रयत्न किया और दलित समाज एक स्वतंत्र राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के रूप में आगे आए, यह उनकी इच्छा और प्रयास कभी नहीं रहा।

गाँधीवादी दलितों की मूल प्रेरणा गाँधी और हिन्दू धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति भावना रही है। डा. अम्बेदकर ने जब हिन्दू धर्म को त्यागने की घोषणा की तो उसके बाद दलितों में से ही कुछ लोगों ने धर्मान्तरण की घोषणा का विरोध किया। 1932 ई. के पूना समझौते के बाद महात्मा गाँधी ने अछूतोद्धार के लिए ''हरिजन सेवक संघ'' नाम की संस्था की स्थापना की और इसके लिए उन्होंने ''हरिजन'' नाम का साप्ताहिक पत्र भी शुरू किया। लेकिन इन संस्थाओं के माध्यम से गाँधीवादी दलित, जाति-पाँति और अछूतपन के विनाश का कोई ठोस कार्यक्रम जन-प्रबोधन का भी कार्य नहीं कर सके। गाँधी का कहना था कि हिन्दू धर्म सब धर्मों से उत्तम है। गाँधीवादी दलितों के लिए जाति-भेद, अछूतपन कोई समस्या ही नहीं है। उन्होंने आज तक जाति समस्या का कोई ठोस विकल्प प्रस्तुत नहीं किया बल्कि प्रस्थापित समाज व्यवस्था में जो कुछ अधिकार, राजनीतिक आरक्षण के कारण मिल जाए उन्हें प्राप्त करने की होड़ में वे लगे रहे, इसलिए आज भी गाँधीवादी दलित क्रांतिकारी समाज परिवर्त्तन की धारा से बहुत दूर है।

डा. अम्बेदकर ने 25 नवंबर 1949 ई. को संविधान सभा में कहा था कि ''भारत के लोकतंत्र का संरक्षण'' करते समय भारत के लोगों की तीसरी महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान देना चाहिए वह यह कि

पूर्व सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, आर.पी. कॉलेज, दतिआना, बिक्रम, पटना।

उन्हें केवल राजनीतिक लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए। उन्हें भारत को प्राप्त राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तित करना चाहिए। जहाँ राजनीति लोकतंत्र पर अधिष्ठत नहीं वह राजनीतिक लोकतंत्र कभी सफल नहीं होगा, चूँकि सामाजिक लोकतंत्र समानता, बंधुता और स्वतंत्रता इन तीन तत्वों को जीवन के मूल तत्व मानता है। यह तीन तत्व ही लोकशाही के मूल आधार है। इनका एक-दूसरे से अभिन्न संबंध है। जहाँ सामाजिक समानता नहीं होगी वहाॅं स्वतंत्रता का अर्थ केवल मुट्ठी भर लोगों की बहुसंख्य जनों पर हुकुमशाही ही होगी। यदि समानता स्वतंत्रताविहीन हो तो वह व्यक्ति के जीवन की स्वयंप्रेरणा ही समाप्त कर देगी। यदि बन्धुत्व नहीं होगा तो किसी भी रूप में समानता और स्वतंत्रता का प्राकृतिक रूप में समानता और स्वतंत्रता का प्राकृतिक रूप में विकास नहीं होगा। भारत के लोगों को इस बात को स्वीकार करना चाहिए।

डॉ० अम्बेदकर ने जात-पांत और अछूतपन को भारत की मूल और महत्त्वपूर्ण समस्या माना था और उन्होंने इसी आधार पर सम्पूर्ण भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक इतिहास का ऐतिहासिक रूप से अध्ययन किया था। उन्होंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण केवल मॉर्क्सवादी पद्धति से अर्थवाद के आधार पर नहीं किया था और न तो धार्मिक या ब्राह्मणी अध्ययन पद्धति के आधार पर किया था। वे यह मानते थे कि मानवीय इतिहास में मानवीय जीवन को प्रभावित करने वाली कई बातें हैं, इसमें अर्थवाद भी एक है। वे मानवीय इतिहास में मनुष्य की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते थे। वे भारत के तथाकथित मार्क्सवादियों की तरह यहाँ की हर समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के साथ जोड़ना या उसका कसरती तालमेल बैठाना पसंद नहीं करते थे क्योंकि भारत की मुख्य समस्या है जात-पांत और अछूतपन की वह साम्राज्यवाद और सामंतवाद का परिणाम नहीं या अर्थवाद का परिणाम नहीं है बल्कि उसका संबंध भारत के ऐतिहासिक धार्मिक संघर्ष में है, इसलिए उन्हीं तथ्यों पर इस समस्या का हल खोजा जाना चाहिए। इसलिए वे मार्क्सवादियों की अर्थवादी पद्धति से पूरी तरह सहमत नहीं थे, लेकिन उनकी मान्यता थी कि लोकतंत्र में, आर्थिक समानता की सामाजिक स्थिति में, औद्योगिकरण में इस समस्या का हल तेज गति से हो सकता है।

डॉ० अम्बेदकर के पूर्व किसी भी सवर्ण नेता राजनीतिज्ञ, सामाजिक चिंतकों ने जात-पात और अछूतपन को देश के मुख्य सवाल के रूप में देखा ही नहीं। सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता में जात-पात व अछूतपन एक बहुत बड़ी दीवार है, इसको न तो भारत के साम्यवादी और न ही गाँधीवादी समाजवादी समझ सके। यहाँ उनके लिए छूत-सवर्णपन खो जाने का डर था। महात्मा गाँधी ने जाति-पाति और अछूतपन के सवाल को कभी राजनीतिक समस्या नहीं माना, बल्कि उन्होंने अछूतों को हमेशा राजनीतिक चेतना से दूर रहने का उपदेश दिया।

भारत की राजनीति में जात-पात और अछूतपन का सवाल एक राजनीतिज्ञ के रूप में डॉ० अम्बेदकर ने प्रस्तुत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अछूतपन के सवाल पर उनकी मान्यता थी कि सवर्ण हिन्दू और अछूत यह दो वर्ग समाज में है। दोनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है और यह सवर्ण हिन्दू वर्ग हमेशा से ही अछूत पर जुल्म कर रहे हैं, उसका शोषण कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने दलित समाज में राजनीतिक चेतना जागृत करने के लिए साईमन कमीशन के सामने आम आदमी के लिए मतदान के अधिकार की माँग कर सार्वजनिक चुनाव प्रणाली का जबरदस्त समर्थन किया था।

जात-पात और अछूतपन के विनाश के संबंध में डा. अम्बेदकर का दृष्टकोण क्रान्तिकारी था। 1892 ई. में हुई इलाहाबाद काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष श्री डब्लू.सी. बनर्जी के इस मत का विरोध करते हुए कहा कि ''अपना सामाजिक सुधार हुए वगैर हम राजनीतिक

सुधार के लिए पूरी तरह से अयोग्य हैं, यह जिनकी मान्यता है उनके मत से मैं सहमत नहीं हूँ।'' डा. अम्बेदकर ने उस समय दलितों पर हुए अत्याचार और अखबारों में छपी घटनाओं का जिक्र करते हुए कहा ''अछूतों जैसे अपने ही देश भाईयों के हक पर तुम सार्वजनिक स्कूल में जाने के लए, पढ़ने के लिए, सार्वजनिक कुएँ पर पानी भरने के लिए, सार्वजनिक सड़कों पर चलने के लिए, अपनी इच्छा के अनुसार खाने के लिए तुम सवर्ण उन्हें अपने अधिकार नहीं देते, फिर भी तुम राजसत्ता प्राप्त करने के लायक हो? यह सवाल उनका स्पृश्य हिन्दुओं और राष्ट्रीय काँग्रेस के लोगों से सीधा सवाल था। डॉ० अम्बेदकर इस सिद्धान्त के समर्थक थे कि एक जनसमूह को दूसरे पर अपनी सत्ता कायम करने का कोई अधिकार नहीं। अछूतपन का सवाल एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को अछूत गुलाम बना कर रखने का सवाल है और इन गुलामों अछूतों को अधिकारहीन बना दिया गया है।

डा. अम्बेदकर ने जीवशास्त्री मान्यता का जबरदस्त खण्डन किया है। उन्होंने कहा कि शुद्ध वंश के लोग दुनिया में कहीं है ही नहीं। जाति-व्यवस्था के सन्दर्भ में उनका यह निष्कर्ष था कि ''जिनको इतिहास काल में ऊँचा सामाजिक दर्जा प्राप्त हुआ है या ऐसे कुटिल और स्वार्थी हिन्दुओं की दुष्टता का परिणाम जाति-संस्था का मूर्त्त रूप है और उन्होंने अधिकार के बल पर निचले दर्जे के लोगों पर अपनी सत्ता कायम की। ''जाति-व्यवस्था में भीख माँगने वाला ब्राह्मण भी ऊँचे वर्ण का ऊँची जाति का कहलाता है और इसलिए हिन्दू समाज में वह पूज्य बन जाता है। नीची जाति का धनवान मनुष्य भी हिन्दू समाज में शूद्र ही रहता है।''

25 दिसम्बर 1927 ई. को डॉ० अम्बेदकर ने हिन्दू विधि-विधान के प्रति अपना निषेध व्यक्त किया और दलित वर्ग परिषद में ''मनुस्मृति'' को जलाकर होली मनायी। उन्होंने कहा ''दलित-अछूत समाज को अपमानित करने वाली, उनकी उन्नति में दीवार बनने वाली, उनका आत्मसम्मान, अस्तित्व, उनकी अस्मिता को छीन करके उनको सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गुलामी की जंजीरें पहनाने वाली, मनुष्य के नैसर्गिक अधिकारों का हनन करने वाली मनुस्मृति कलंकित है और वह स्वीकारने योग्य नहीं है। 25 दिसम्बर 1927 ई. को एक ओर मनुस्मृति जल रही थी और दूसरी ओर डॉ०. अम्बेदकर ''मानवीय अधिकारों का घोषणा पत्र लिख रहे थे - कि (1) सभी आदमी जन्म से समान दर्जे के हैं और वे मरते समय तक समान दर्जे के ही रहेंगे। (2) उपरोक्त जन्मसिद्ध अधिकार कायम रहना चाहिए और यही राज्य व्यवस्था और समाज व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य होना चाहिए। (3) अखिल जन ही सभी प्रकार के अधिकारों और सत्ता की जननी है। (4) हर किसी व्यक्ति को जीने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। (5) सामाजिक समानता के विरोधी और विभिन्न विचारों पर कानूनी बंदी होना चाहिए। (6) कानून जनता या जनप्रतिनिधियों द्वारा बनाना चाहिए और सभी पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक समानता और सामाजिक चेतना का जबरदस्त आन्दोलन छेड़ा था और जिस ''मनुस्मृति'' का दहन किया था उसका व्यापक परिणाम संवेदनशील भारतीय जनमानस पर हो गया। महाड़ के समता आन्दोलन की भूमिका स्पष्ट करते हुए डा. अम्बेदकर ने कहा था कि ''चवदार तालाब का पानी पीने से हम अमर होने वाले नहीं है। आजतक हमने चवदार तालाब का पानी नहीं पिया, इसलिए मरे नहीं। इस बात को स्थापित करना है कि हम भी इन्सान हैं। अपने अधिकार को कायम करने के लिए हमें तालाब पर जाना चाहिए। इस महाड़ की क्रान्ति ने दलित वर्ग में राजकीय सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की चेतना जगायी। इस क्रांति का परिणाम स्पृश्य समाज पर भी हुआ। इसे प्रगति और जागृति का संग्राम मानना चाहिए।

दलितों के इतिहास में गोलमेज कान्फ्रेंस का बड़ा महत्व है। डा. अम्बेदकर और आर. श्रीनिवासन ने इंग्लैंड में हुए प्रथम इंडियन राउंड टेबुल कान्फ्रेंस

(1930) में भारत के अछूत नेता के रूप में प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने इस कान्फ्रेंस में कहा था कि ''भारत देश स्वयंशासित होगा, उस समय उसकी राजसत्ता बहुसंख्य जाति के हाथ में चली जाएगी और ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक अछूत जातियों को निर्भयता से जीना संभव नहीं होगा। इसलिए स्वतंत्र भारत के संविधान में अछूतों के हितों की रक्षा करने हेतु उसमें आठ बातों को सम्मिलित करना जरूरी है। ये आठ बातें थीं- (1) समान नागरिकता (2) समान अधिकार (3) जाति द्वेषपूर्ण व्यवहार विरोधी कानून राज्य संविधान में होना ही चाहिए। (4) विधि मण्डल में पर्याप्त प्रतिनिधित्व (5) सरकारी नौकरियों में प्रर्याप्त प्रतिनिधित्व (6) सरकार के पूर्वग्रह दूषित व्यवहार और निष्क्रियता के विरोध में संविधान में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट, 1867 सेक्शन 93 के अनुसार प्रावधान हो। (7) सरकारी विभाग में सदैव सचेत स्वतंत्र विभाग स्थापित किया जाए और इसका प्रावधान संविधान में ही हो। (8) गवर्नर जनरल के मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व। उपरोक्त बिन्दुओं पर उन्होंने ब्रिटिश सत्ताधारियों का ध्यान आकर्षित किया और उक्त प्रकार के राजनीतिक अधिकार दलितों को देना क्यों जरूरी है, इसका विस्तृत विश्लेषण उन्होंने अपने निवेदन में किया था। गोलमेज परिषद् के कारण अब दलितों की सामाजिक-राजनीतिक समस्या की ओर बड़ी सहानुभूति के साथ देखा जा रहा था।

दूसरा गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर से 1 दिसम्बर 1931 में हुई। डॉ० अम्बेदकर इसमें भी उपस्थित थे। दूसरी गोलमेज परिषद में डा. अम्बेदकर और महात्मा गाँधी में अछूतों की राजनीतिक माँगों पर जबरदस्त संघर्ष हुआ। इसका परिणाम भारत के दलितों पर पड़ा। उस समय गाँधी जी का उपहास करने वाले ''केसरी'' ने भी महात्मा गाँधी के मतों का समर्थन किया। इस सम्मेलन में गाँधीजी ने इस मत का अग्रही प्रतिपादन किया कि अछूतों का सवाल हिुओं का निजी मामला है, इसलिए इसे स्वतंत्र रूप से हल करने के लिए भावी राज्य संविधान में कानूनी प्रावधान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस परिषद् में डा. अम्बेदकर और गाँधीजी के संघर्ष के परिणामस्वरूप ''कम्युनल अवार्ड'' घोषित हुआ। महात्मा गाँधी इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं रख सके कि दलितों को राजनीतिक अधिकार क्यों नहीं दिए जाने चाहिए। दूसरी ओर डा. अम्बेदकर ने दलितों की हालात को सच्चाई के साथ बयान किया और इसके फलस्वरूप दलितों को विशेष राजनीतिक अधिकार की घोषणा हुई। इसके विरोध में गाँधीजी ने पूना के यरवडा जेल में आमरण अनशन शुरू किया। इससे भले ही दलितों को बहुत बड़ी राजनीतिक अधिकारों की हानि हुई, लेकिन दलित समाज में राजनीतिक अधिकारों का महत्त्व महसूस हुआ। उन्हें अपनी राजनीतिक शक्ति का एहसास हुआ।

निष्कर्षः

डा. अम्बेदकर ने ग्रामीण दलित, किसान, खेत मजदूरों के अधिकारों हेतु संघर्ष किया, उनके हितों से संबंधित कानून बनवाए। उन्होंने शहरी-कामगार, मिल-मजदूरों, सफाई-कामगार तथा वेश्याओं को भी संगठित कर उनके अधिकारों हेतु ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध संघर्ष किया। पूना में पार्वती मन्दिर प्रवेश का आन्दोलन हुआ, अमरावती में अम्बा देवी मन्दिर प्रवेश का सत्याग्रह हुआ। महांड में समता आन्दोलन से प्रेरणा लेकर बंगाल में कलकत्ता के प्रसिद्ध काली मंदिर में प्रवेश हेतु जन-आन्दोलन हुआ था। इसमें सनातनी ब्राह्मण हिन्दू, सरकार के द्वारा इन समतामूलक आन्दोलनों को कुचल देने का प्रयास हुआ।

संदर्भ-ग्रन्थ सूचीः

1. डॉ. अम्बेदकर- जातिभेद निर्मलन'' (पृ. 45)
2. डॉ. अम्बेदकर -राईटिंग एंड स्पीसेज'' (भाग-2 पृ. 439)
3. सोशल मेटेरियल ऑन डा. बाबा साहेब अम्बेदकर -भाग -1 (पृ. 176)
4. डा. भदन्त आनंद कौसत्यान -भगवान बुद्ध और उनका धर्म